

बालश्रम अवधारणा: एवं मानव अधिकार संरक्षण**अनिल कुमार शर्मा**

सह आचार्य- राजनीति विज्ञान

राजकीय महाविद्यालय राजगढ़ अलवर (राजस्थान)

पूरन मल मीना

(एम.ए., एम.फिल.)

एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष- राजनीति विज्ञान विभाग

राजकीय महाविद्यालय, राजगढ़, अलवर (राज.) पिन कोड नं- 301408

मो.न. 9461669111 Mail id - pmmeena11@gmail.com

सारांश-

बालश्रम मानवाधिकारों के उल्लंघन की एक ज्वलंत समस्या है, जो विश्व भर में बच्चों के शारीरिक, मानसिक और नैतिक विकास को प्रभावित करती है। प्रस्तुत शोध आलेख बालश्रम की अवधारणा, उसके ऐतिहासिक उद्भव, कारणों, दुष्परिणामों तथा मानवाधिकारों के सैद्धांतिक एवं ऐतिहासिक संदर्भ में विश्लेषण प्रस्तुत करता है। लेख में बालश्रम को गरीबी, सामाजिक विषमता और शोषण की उपज बताया गया है, जिसमें बच्चे 14 वर्ष से कम आयु में श्रमिक बनकर शिक्षा और बाल्यावस्था से वंचित हो जाते हैं।

मानवाधिकारों की अवधारणा को उपयोगितावादी, आदर्शवादी, ऐतिहासिक और समाज कल्याणकारी सिद्धांतों के माध्यम से समझाया गया है। लेख बाल अधिकार आयोग और राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की भूमिका पर भी प्रकाश डालता है तथा सुझाव देता है कि बालश्रम उन्मूलन के लिए शिक्षा, आर्थिक सशक्तिकरण और सख्त कानूनी कार्यान्वयन आवश्यक है। यह आलेख 2021 से पहले के संदर्भों पर आधारित है और नीति-निर्माताओं, विद्वानों तथा सामाजिक कार्यकर्ताओं के लिए उपयोगी है। बालश्रम मुक्त समाज ही सच्चे लोकतंत्र और मानव विकास की नींव हो सकता है।

बीज शब्द- बालश्रम, मानवाधिकार, बाल अधिकार, बाल अधिकार आयोग, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, उपयोगितावादी सिद्धांत, आदर्शवादी सिद्धांत, गरीबी एवं शोषण, शिक्षा का अधिकार, सामाजिक न्याय।

परिचय- मानवाधिकार के संबंध में समूचे विश्व पर दृष्टिपात करने से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि समसामयिक काल में मानवाधिकारों के हनन की प्रतिक्रिया स्वरूप ही समाज में मानवाधिकार संरक्षण की चेतना का उदय हुआ। वर्तमान में मानवाधिकार हनन की विकट समस्या ने मानवाधिकारों को अध्ययन एवं अनुसंधान का प्रमुख विषय बना दिया है। प्रस्तुत शोध आलेख बालश्रमिकों के मानवाधिकारों पर गंभीर चिंतन प्रस्तुत करता है। बालश्रमिक एवं मानवाधिकारों की अवधारणा समाज के संवेदनशील पहलू से गहराई से जुड़ी हुई है, क्योंकि बालश्रम की समस्या मानवाधिकार उल्लंघन की समस्या है। मानव ने अपने बौद्धिक, आध्यात्मिक, आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लिए ऐसे जीवन की कल्पना की है जिसमें वह भय, दबाव एवं शोषण से मुक्त होकर सम्मानजनक जीवन व्यतीत कर सके। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए समाज और राज्य का गठन किया गया। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रहकर वह अपने व्यक्तित्व का विकास करना चाहता है, जो तभी संभव है जब उसे अपनी अंतर्निहित शक्तियों के विकास का उचित अवसर मिले। यदि ऐसा नहीं होता तो उसका व्यक्तित्व कुंठित हो जाता है, बहुमुखी विकास रुक जाता है, प्रकृति से प्राप्त क्षमताएं अविकसित रह

जाती हैं और जीवन व्यर्थ-सा हो जाता है। प्रसिद्ध दार्शनिक ग्रीन ने कहा है कि मानव चेतना अपने विकास हेतु स्वतंत्रता चाहती है, स्वतंत्रता अधिकारों में निहित है और अधिकार राज्य की मांग करते हैं। अतः राज्य का अस्तित्व मुख्यतः नागरिकों के अधिकारों की रक्षा के लिए है। **बालश्रम की अवधारणा-** बालश्रम अवधारणा से कई प्रश्न हमारे सामने आते हैं – बालश्रम क्या है? यह कब और कैसे अस्तित्व में आया? इसके कारण और दुष्परिणाम क्या हैं? जब सामाजिक सुविधाओं से वंचित बच्चे 14 वर्ष या उससे कम आयु में श्रम करने लगते हैं तो वे बालश्रमिक कहलाते हैं। जेम्स वाट के वाष्पाचालित यंत्र और कातने की मशीनों ने 1760-1840 के बीच औद्योगिक क्रांति की शुरुआत की। इसके बाद 19वीं शताब्दी के मध्य में जूट, कपड़ा मिलों और खदानों में बच्चों के काम करने से बालश्रम का बीजारोपण हुआ।

भारत में बालश्रम दो रूपों में दिखाई देता है – एक, अभिभावकों को सहयोग देने के लिए बच्चों द्वारा किया गया काम; दूसरा, परिवार की आय बढ़ाने के लिए किया गया काम। इसमें कोई संदेह नहीं कि बालश्रमिक समाज के सबसे गरीब, अभावग्रस्त और असहाय वर्ग से आते हैं। बालश्रम और गरीबी का घनिष्ठ संबंध है। गरीब परिवार में बच्चे अतिरिक्त आय का स्रोत माने जाते हैं। वे या तो घरेलू काम में सहयोग करते हैं या होटल-गैरेज आदि स्थानों पर काम करके परिवार की आय बढ़ाते हैं। बालश्रम आज भारत ही नहीं, समूचे विश्व की ज्वलंत समस्या है। बालश्रमिक हमारी सामाजिक व्यवस्था की शोषणवादी मानसिकता का जीवंत रूप हैं, जो आर्थिक प्रगति में गर्व अनुभव करती है किंतु गरीबों और मजदूरों के शोषण से तनिक भी विचलित नहीं होती। यह संवेदनहीनता ही अन्यायपूर्ण परिस्थितियों को जन्म देती है।

मानव का इतिहास एवं मानवाधिकार- मानव का इतिहास इस बात का साक्षी है कि प्रत्येक समाज में व्यक्ति की गरिमा और व्यक्ति-समाज संबंधों को परिभाषित करने का प्रयास किया गया है। सामाजिक नैतिकता, व्यक्तिगत मूल्य, पदक्रम, जन्म, लिंग आदि इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे हैं। मानवाधिकार की अवधारणा कभी-कभी निजी अधिकारों पर बल देकर समाज के साथ अंतर्विरोध पैदा करती है। किंतु मानवाधिकार प्रवर्तकों की धारणा है कि ये अधिकार अन्तर्निहित, अपृथक और वैश्विक हैं। सरल शब्दों में, कुछ मूलभूत अधिकार जन्मजात हैं, जिन्हें मनुष्य से अलग नहीं किया जा सकता। मानवाधिकार एक जटिल अवधारणा है। यह 'दो तरफा' प्रक्रिया है – राज्य नागरिकों के अधिकारों की रक्षा का दायित्व लेता है और नागरिक राज्य से इनकी मांग करते हैं। राज्य का सर्वोच्च लक्ष्य व्यक्ति के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास है। उपयोगितावादी विचारक बेंथम के कई विचार 19वीं सदी के उदारवादी चिंतन के केंद्र रहे। इनमें प्रेस की स्वतंत्रता, संगठन की आजादी, व्यापार की स्वतंत्रता, आवागमन की स्वतंत्रता, कानून का

शासन, जनमत में आस्था और निर्दलीय शासन से मुक्ति जैसे मुद्दे शामिल थे। ये सभी बेंथम के मानवाधिकार दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हैं। जॉन स्टुअर्ट मिल प्रारंभ में व्यक्तिवादी अधिकारों के समर्थक थे, किंतु 1860 के बाद उन्होंने समाजवादी भावना अपनाई। उन्होंने स्त्री अधिकार, संपत्ति पर कर, प्राकृतिक संसाधनों पर राज्य नियंत्रण और श्रमिकों के काम के घंटे निश्चित करने जैसे विचारों का समर्थन किया। इसी क्रम में हारोल्ड लास्की, टी. एच. ग्रीन और जॉन रॉल्स जैसे विचारकों ने मानवाधिकारों को आगे बढ़ाया। लास्की ने काम का अधिकार, उचित वेतन, शिक्षा, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और न्यायिक सुरक्षा पर बल दिया। ग्रीन ने व्यक्ति की गरिमा, स्वतंत्रता, राज्य विरोध का अधिकार और विश्व शांति का समर्थन किया। रॉल्स के न्याय सिद्धांत के अनुसार सामाजिक व आर्थिक असमानताएं सबसे कमजोर वर्ग के अधिकतम लाभ के लिए होनी चाहिए।

उदारवाद ने जीवन, संपत्ति, सुरक्षा, स्वतंत्रता, धर्म और अभिव्यक्ति जैसे मूलभूत अधिकारों को मजबूत किया। हालांकि, पूंजीवाद और साम्राज्यवाद में दोहरे मापदंड की समस्या रही है। मार्क्सवाद में भी सैद्धांतिक रूप से अधिकारों की बात है, किंतु व्यवहार में उल्लंघन हुआ। संक्षेप में, मानव जीवन के समग्र विकास के लिए अधिकारों की सुरक्षा अनिवार्य है। व्यक्तिगत और सामाजिक अधिकारों में समन्वय ही सच्चा कल्याण सुनिश्चित कर सकता है।

मानवाधिकार के संबंध में संपूर्ण विश्व पर दृष्टिपात इस तथ्य को रेखांकित करता है कि समसामयिक समय में मानवाधिकारों के प्रवर्तन की दिशा में मानवाधिकारों के हनन की प्रतिक्रिया स्वरूप ही समाज में मानवाधिकार संरक्षण की दिशा में चेतना का प्रादुर्भाव हुआ। वर्तमान में मानवाधिकार हनन की विकट समस्या ने ही मानवाधिकारों को अध्ययन एवं अनुसंधान के एक प्रमुख विषय के रूप में स्थापित किया है। प्रस्तुत शोध आलेख बालश्रमिकों के मानवाधिकारों पर गंभीर चिंतन प्रस्तुत करता है। बालश्रमिक एवं मानवाधिकारों की अवधारणा समाज के संवेदनशील पहलू से व्यापक रूप से जुड़ी हुई है, क्योंकि बालश्रम की समस्या मानवाधिकार के उल्लंघन की समस्या है। मानव ने अपने बौद्धिक, आध्यात्मिक, आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लिए ऐसे जीवन की कल्पना की जिसमें वह भय, दबाव एवं शोषण से मुक्त तथा सम्मानजनक जीवन का निर्वाह कर सके। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए समाज व राज्य का गठन किया गया।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रहकर वह अपने व्यक्तित्व का विकास करना चाहता है, जो तभी संभव है जब व्यक्ति को अपनी अन्तर्निहित शक्तियों के विकास का उचित अवसर मिले। ऐसा नहीं होने पर उसका व्यक्तित्व कुंठित हो जाता है, जिससे उसका बहुमुखी विकास नहीं हो पाता तथा प्रकृति से प्राप्त क्षमताएं अविकसित रह जाती हैं और उसका जीवन व्यर्थ सा हो जाता है। प्रसिद्ध दार्शनिक ग्रीन ने इसलिए कहा है कि मानव चेतना अपने विकास हेतु स्वतंत्रता चाहती है, स्वतंत्रता अधिकारों में निहित है और अधिकार राज्य की मांग करते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि राज्य का अस्तित्व भी नागरिकों के अधिकारों की रक्षा के लिए है। जब मानवाधिकारों की संकल्पनात्मक ढांचे की बात की जाती है तो उसमें अनेक अधिकार शामिल हैं, जो मनुष्य को जन्म से प्राप्त होने चाहिए। ये सभी अधिकार बालकों को भी समान रूप से मिलने चाहिए, क्योंकि वे भी मानव हैं। आज बालश्रमिक इन अधिकारों से वंचित हैं, इसलिए उनके लिए मानवाधिकारों की प्राप्ति स्वयं एक मानवाधिकार बन गई है। बालश्रमिक विभिन्न क्षेत्रों में अमानवीय परिस्थितियों से गुजर रहे हैं। बालक मानव जीवन की नींव है। किसी भी राष्ट्र की भावी स्थिति का अनुमान उसके बच्चों को देखकर

लगाया जा सकता है। वे ही देश के भविष्य के कर्णधार और भाग्य-विधाता हैं। मेरी जेने कोल की पंक्तियां याद दिलाती हैं कि "मैं बच्चा हूँ, सारी दुनिया मेरे आने की प्रतीक्षा करती है।" बालक राष्ट्र की बहुमूल्य धरोहर और सम्पदा हैं। उनका समग्र विकास राष्ट्र की उन्नति का पैमाना है। यदि बाल समाज अनुशासित, स्वस्थ, शिक्षित और कौशलयुक्त है तो राष्ट्र का भविष्य उज्ज्वल होगा। इसके विपरीत, यदि यह वर्ग उपेक्षित रहा तो राष्ट्र पतनोन्मुख हो जाएगा। बालश्रम समस्या विश्वस्तर पर ज्वलंत है। यह गरीबी, शोषण और सामाजिक विषमता की उपज है। मानव सभ्यता के विकास के साथ यह समस्या जटिल होती गई है। विकासशील देशों में यह और भी विकराल रूप धारण कर चुकी है। बालश्रम उन्मूलन राष्ट्र की प्राथमिकता होनी चाहिए, क्योंकि बच्चों के समग्र विकास में ही समाज और राष्ट्र का विकास निहित है।

बालश्रम अवधारणा से कुछ प्राकल्पनाएं हमारे सम्मुख आती हैं, जैसे— बालश्रम क्या है? यह कब और कैसे अस्तित्व में आया? इसके कारण एवं दुष्परिणाम क्या हैं? जब सामाजिक सुविधाओं से वंचित बच्चे 14 वर्ष या उससे कम आयु में ही श्रम करने लगते हैं तो वे बालश्रमिक कहलाते हैं। जेम्स वाट के वाष्पाचालित यंत्र और कातने की मशीनों ने सन् 1760-1840 में औद्योगिक क्रांति की शुरुआत की। तत्पश्चात् 19वीं शताब्दी के मध्य में जूट, कपड़ा मिल एवं खदानों में बच्चों के काम करने से बालश्रम का बीजारोपण हुआ। हमारे देश में बालश्रम दो रूपों में देखने को मिलता है – अभिभावकों को सहयोग देने के लिए बच्चों द्वारा काम करना तथा परिवार की आय बढ़ाने के लिए बच्चों द्वारा काम करना। इसमें कोई दो राय नहीं है कि बालश्रमिक समाज के बेहद गरीब, अभावग्रस्त और बेबस वर्ग से आते हैं। बालश्रम और गरीबी में घनिष्ठ संबंध है। एक गरीब व्यक्ति के लिए उसके बच्चे सम्पत्ति के रूप में होते हैं और बच्चे परिवार की अतिरिक्त आय के स्रोत माने जाते हैं। बच्चे या तो काम में सहयोग कर परिवार को राहत देते हैं या होटलों-गैरागों आदि जगहों पर नियोजित होकर पारिवारिक आय को बढ़ाते हैं।

बालश्रम आज न केवल भारत अपितु विश्व की ज्वलंत समस्याओं में से एक है। बालश्रमिक हमारी सामाजिक व्यवस्था की उस नकारात्मक व शोषणवादी मानसिकता का ही मूर्त रूप हैं, जो आर्थिक प्रगति में गौरवान्वित महसूस करती है, किन्तु उनकी आत्मा गरीबों व मजदूरों के शोषण एवं अन्याय से तनिक भी द्रवित नहीं होती। यह संवेदनहीनता ही अन्यायपूर्ण व शोषणकारी अवस्थाओं को उत्पन्न करने का कारण है। मानव का इतिहास इस बात का उदाहरण है कि प्रत्येक मानव समाज में व्यक्ति की गरिमा तथा व्यक्ति एवं समाज के मध्य संबंधों को परिभाषित करने का सक्रिय प्रयास किया गया है। सामाजिक नैतिकता, व्यक्तित्व मूल्य, सामाजिक पदक्रम, जन्म, लिंग, शासकीय या दैवीय शक्तियां इन मूल्यों के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही हैं। इस प्रसंग में मानवाधिकार की अवधारणा, जो कभी-कभी निजी अधिकारों पर बल देती है, समाज के साथ अन्तर्विरोध पैदा करती है। लेकिन इस संदर्भ में जैसा कि मानवाधिकारों के प्रवर्तकों की धारणा है कि मानवाधिकार स्वयं में अन्तर्निहित, अपृथक्करणीय एवं वैश्विक हैं। सरल भाषा में कहें तो कुछ मूलभूत मानवाधिकार हैं, जिन्हें व्यक्ति या समाज से अलग नहीं किया जा सकता। अर्थात् ये अधिकार जन्मजात हैं, इन्हें मानव से अलग नहीं किया जा सकता तथा अपने प्राकृतिक स्वभाव में 'वैश्विक' हैं क्योंकि समस्त मानव समाज के लिए अनिवार्य हैं। मानवाधिकार एक जटिल अवधारणा है। इसकी विषय-वस्तु पर कोई सर्वमान्य विचार नहीं है। यह एक 'दो तरफा' क्रिया है। राज्य द्वारा उसके नागरिकों के लिए प्रतिबद्धता है, जिसके अनुसार राज्य सभी

नागरिकों के मानवाधिकारों की रक्षा को सुनिश्चित करने की व्यवस्था करेगा। दूसरी तरफ, नागरिक भी अपने मानवाधिकारों की मांग राज्य से कर सकते हैं। राज्य का सर्वोच्च लक्ष्य व्यक्ति के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करना है। इस प्रकार राज्य द्वारा व्यक्ति को प्रदान की जाने वाली इन बाहरी सुविधाओं का नाम ही 'अधिकार' है।

अतः सामाजिक जीवन की ऐसी दशाएं, जिसमें मानव को अपने व्यक्तित्व का चतुर्मुखी विकास करने हेतु समान व उपयुक्त परिस्थितियां और संरक्षण प्राप्त हों, उन्हें मानवाधिकार कहा जा सकता है। मानवाधिकार प्रारंभिक मानवीय आवश्यकताओं पर आधारित हैं, जिसमें मुख्य है जीवन। चूंकि मानव इस पृथ्वी पर उपलब्ध सभी जीवधारियों में श्रेष्ठ, बुद्धिमान व विवेकशील है, अतः चाहे वह किसी भी वंश, जाति, प्रजाति, भाषा, धर्म, लिंग व राष्ट्र का हो, अपने जीवन की सुरक्षा व सम्मानजनक जीवन जीने तथा समुचित विकास का अधिकार मिलना ही चाहिए।

वर्तमान में मानवाधिकारों पर अत्यधिक बल दिया जा रहा है। आधुनिक युग संविधानवाद और प्रजातंत्र का युग है तथा प्रत्येक प्रगतिशील राज्य अपने नागरिकों को कुछ न कुछ अधिकार अवश्य प्रदान करता है, जिनका उपयोग वे वैधानिक सीमाओं में रहकर करते हैं। अधिकारों का महत्व उनके पूर्ण उपभोग में है। मानवाधिकार नैतिक और वैध हो सकते हैं।

निष्कर्ष- बालश्रम मानवाधिकारों के उल्लंघन की जड़ है, जो बच्चों के समग्र विकास को बाधित करता है। उपयोगितावादी, आदर्शवादी, ऐतिहासिक और समाज कल्याणकारी सिद्धांतों से स्पष्ट है कि अधिकार व्यक्ति और समाज दोनों के कल्याण के लिए हैं। बाल अधिकार आयोग और राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग जैसी संस्थाओं को सशक्त बनाकर, शिक्षा को अनिवार्य एवं गुणवत्तापूर्ण बनाकर तथा आर्थिक असमानता को दूर करके ही हम बालश्रम मुक्त समाज का निर्माण कर सकते हैं। यह न केवल बच्चों का अधिकार है, बल्कि राष्ट्र का नैतिक दायित्व भी है। यदि हम बालश्रम को समाप्त नहीं करते, तो भावी पीढ़ी कुंठित और शोषित रहेगी। बालश्रम उन्मूलन से ही सच्चा सामाजिक न्याय और लोकतंत्र मजबूत होगा। गांधीजी की नाई तालीम और स्वदेशी की भावना को अपनाकर हम इस दिशा में ठोस कदम उठा सकते हैं।

संदर्भ सूची :-

1. श्रुति शर्मा, भारत और मानवाधिकार, बासुकीनाथ द्वारा सम्पादित पुस्तक भारतीय शासन और राजनीति, ओरियंट ब्लैकस्वान पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2011
2. जे. सी. जौहरी आधुनिक राजनीतिक विज्ञान के सिद्धांत-स्टारलिंग पब्लिशर्स प्रा. लि. नई दिल्ली, 2010
3. सुभाष शर्मा, भारत में मानवाधिकार, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नई दिल्ली, 2009
4. मनोज कुमार दशोरा, बाल श्रमिक समस्या एवं समाधान, हिमांशु पब्लिकेशंस, जयपुर, 2006
- अरुण कुमार दीक्षित, बाल अधिकार, बाल श्रम, योजना, नई दिल्ली 2008
6. सुभाष शर्मा, भारत में मानवाधिकार, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नई दिल्ली, 2006
- रवि प्रकाश यादव, बाल श्रम समस्या एवं समाधान, आविस्कार पब्लिशर्स, जयपुर, 2008